Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:4.081
Volume-12, Issue-4, March-2019 www.researchguru.net

चन्देल कालीन अर्थव्यवस्था : एक अध्ययन

विशाल विक्रम सिंह
शोधार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर(म.प्र.) E-mail veesuthakur1990@gmail.com, Mob.No. 7049744841

शोध सारांश–वर्तमान भारत में अर्थ को धन, सम्पत्ति, पूँजी इत्यादि विभिन्न नामों से जाना गया। प्राचीन काल में राजकीय सम्पत्ति भी अर्थ का एक ही अंग था। इसके अन्तर्गत राजस्व, जमीन, कृषि, खान इत्यादि आय के साधनों को स्थान मिला। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों द्वारा पुरूषार्थ मे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को स्थान दिया गया। जिसमें मानव जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने के लिए अर्थ को भी महत्वपूर्ण माना गया। इसी सन्दर्भ में डॉ. कापडिया का उल्लेख है कि मोक्ष मानव जीवन का परम लक्ष्य तथा आध्यात्मिक अनुभूति का प्रतीक है। अर्थ सम्पत्ति तथा उनके भोग की तरफ संकेत करता है। जबकि अर्थ एवं काम सांसारिक क्रिया–कलापों का भी प्रतिनिधित्व करता है। अर्थ में मात्र मुद्रा ही नहीं अपितु भौतिक सुख–सुविधाएँ प्रदान करने वाली समस्त चीजों का समावेश होता है। अर्थ एक ऐसा कारक है जिससे धार्मिक कार्य, आनन्द, वासना, साहस, क्रोध, विद्या उत्पन्न होती है। अर्थात धन या सम्पत्ति के अभाव में इन कार्यों में सफलता प्राप्त करना कठिन होता है। अर्थ का विकास मानव सभ्यता के साथ ही प्रारम्भ हो गया था। प्रारम्भिक मानव यायावर, आखेटक, गुफावासी था। शनैः शनैः खाद्य संग्रहण के दौरान वस्तु विनमय के माध्यम से आर्थिक क्रिया–कलाप प्रारम्भ हुए, जो कि राजतन्त्र में अर्थ का रूप धारण कर लिये। राज्य के सप्तांग सिद्धान्त में कोष को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

कुंजी भाब्द–अर्थव्यवस्था, उद्योग–धन्धे, कृषि, पशुपालन, व्यापार।

चन्देल कालीन अर्थव्यवस्था की समृद्धि के प्रतीक स्वरूप अनेकों मंदिर तथा प्रसाद वर्तमान में भी उपलब्ध हैं। इन्होनें आर्थिक संस्थाओं के रूप में उद्योग धन्धों, पशुपालन, कृषि कार्य, व्यापार–वाणिज्य इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया। पूर्वमध्य काल में उत्तरभारत की भाँति ही मध्य भारत में चन्देलों के समय में उद्यमियों एवं शिल्पियों के कला, कौशल तथा विभिन्न प्रकार के लघु उद्योगों का विकास हुआ। इससे जनसामान्य भी अपनी इच्छानुसार उपयुक्त उद्योग धन्धों का चयन करके अपना जीवन यापन करने लगे। चन्देल अभिलेखों से यह संकेत मिलता है कि कृषि तथा पशुपालन प्राचीन काल से ही आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार बनकर रहे। इन्होंने कृषि कार्य को सफल बनाने के लिए सिंचाई की भरपूर व्यवस्था की।

–:उद्योग धन्धे:–

चन्देल काल में उद्योग धन्धों के रूप में काष्ठ उद्योग वस्त्र उद्योग, मणि उद्योग, मृदभाण्ड उद्योग, खनन उद्योग, धातु उद्योग, हाथी दाँत उद्योग, रत्न उद्योग, चर्म उद्योग, दर्पण उद्योग, पशुपालन इत्यादि उद्योग थे। इसके अतिरिक्त औद्योगिक संगठनों के रूप में स्वर्णकार, ताम्रकार, कर्मकार, तन्तुवाय, मणिकारक, कुम्भकार, चर्मकार, मूर्तिकार, वैद्य, नापित, वणिक भी इस क्षेत्र में कार्यरत थे।

काष्ठ उद्योग – चन्देल कालीन स्थापत्य में चारपाई, मेज, खड़ाऊ, श्यामपट्ट तथा रथ का अंकन होने से तत्कालीन समाज में काष्ठ कला की उन्नति के संकेत मिलते है।[1] भिन्न–भिन्न प्रकार के नावों, जहाजों रथों, लकड़ी की मूर्तियों इत्यादि के निर्माण से उस काल में बढ़ई या वर्द्धकि समाज की उपस्थिति सिद्ध होती है। वनों से काटकर लायी गयी लकड़ियों से भवनों का निर्माण तथा घरों की साज–सज्जा का कार्य भी किया जाता था।

वस्त्र उद्योग – खजुराहो मंदिर स्थापत्य में उत्कीर्ण स्त्री एवं पुरूषों द्वारा भाँति–भाँति के वस्त्रों को पहने दिखलाया गया है। जिससे उस काल में वस्त्र उद्योग के संकेत प्राप्त होते हैं। इस उद्योग के अन्तर्गत सूती, ऊनी, लिनन, बल्कल आदि वस्त्रों को सम्मिलित किया गया था।[2] वस्त्र विन्यास के द्वारा तत्कालीन समाज के व्यक्तित्व एवं संस्कृति की व्याख्या आसानी से की जा सकती है। प्राचीन काल से ही मूर्तियों में वस्त्रों को प्रदर्शित करके उस युग में प्रचलित सौन्दर्य प्रियता को दिखलाया जाता था। मंदिरों में उत्कीर्ण आकृतियों को साड़ी, धोती, चुनरी, चोली, पगड़ी एवं शॉल पहने उत्कीर्ण किया गया है। यहाँ तक कि बुनकरों द्वारा छायांकित एवं कढ़ाई युक्त साड़ियों के भी साक्ष्य प्राप्त हुये हैं।[3] इसके अतिरिक्त कलाकृतियों में सिले हुये परिधान धारण किये हुए लेग भी मिलते हैं जिससे उस काल में सिलाई उद्योग का संकेत भी प्राप्त होता है।

धातु उद्योग – इस उद्योग के अर्न्तगत विभिन्न प्रकार की धातुओं जैसे सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा इत्यादि का उपयोग किया जाता था। पूर्वमध्य काल में सम्पूर्ण भारत में स्वर्ण की महत्ता बढ़ गयी थी। दसवीं शताब्दी के स्वर्णकारों को उनके कौशल के कारण उच्च सम्मान भी दिया जाता था। अभिलेखों में उन्हें रीतिकार, पीतलकार और पीतलहार कहा गया है।[4] इस काल तक इन कारीगरों ने उन्नत अवस्था प्राप्त करके हार, मोतियों की माला, कमरबन्द, कर्णफूल, कंगन, बाले, बाजूबंद, बिछिया, विभिन्न प्रकार के मुकुट बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। वीरवर्मन के कालंजर प्रस्तर अभिलेख में स्वर्ण दान करने से स्वर्ण की महत्ता पर प्रकाश पड़ता है।[5] चन्देल कलाकृतियों में उत्कीर्ण कलश, कलछुल, घंटी इत्यादि अधिकाँशतः ताँबे के बनते थे। इससे ताम्रकारों का कार्य भी अत्यन्त लोकप्रिय हो गया था। उर्मिला अग्रवाल के मतानुसार ताम्रकारों की प्रमुख सफलता धातु से निर्मित दर्पण से मिलती है, जो बिना रूप विकार के सही प्रतिबिम्ब दिखाता है।[6] सेमरा ताम्रपत्र में पीतल का बर्तन बनाने वाले पितलहार का उल्लेख प्राप्त होता है।[7] जिससे प्रशासनिक स्तर पर इनके अस्तित्व को स्वीकार करने के साक्ष्य उपलब्ध हैं। कर्मकारों का वर्चस्व सदैव से ही समाज में बना रहा। वर्तमान में इन्हें लोहार भी कहा जाता है। ये मुख्यतः अस्त्र शस्त्र एवं कृषि कार्य करने वाले औजारों का निर्माण करते थे।

कुम्भकार – इनका इतिहास प्रागैतिहास से ही प्रारम्भ हो जाता है, क्योंकि उत्खनन के द्वारा मृदभाण्ड सदैव से प्राप्त होते रहे हैं। खजुराहो मंदिरों की भित्तियों पर अंकित चित्रण में मिट्टी के बर्तन बनाने की कला को सीखते हुए दिखलाया गया। इस प्रकार समाज में मृदभाण्ड निर्मित करने वाले पेशेवर कुम्हार भी जीविका चलाते होंगे।

मूर्तिकार या शिल्पकार–चन्देल काल में मूर्तिकारों का कार्य विशाल पत्थरों को आकृति प्रदान करना था। इस व्यापारिक समूह की उपस्थिति लगभग मौर्य काल से मानी जा सकती है, क्योंकि इसी समय में पाषाणों में नक्काशी अधिक देखने को मिलती है। अभिलेखों में इनका एक अन्य नाम रूपकार भी प्राप्त होता है। चन्देल शासक मदन वर्मन के कालंजर प्रस्तर अभिलेख में भी रूपकार 'राम' का उल्लेख है, जिसने नीलकण्ठ की प्रतिमा का निर्माण किया था।[8] ग्रेनाइट पत्थरों से निर्मित चौसठ योगिनी मंदिर का निर्माण तथा इनमें उपस्थित मूर्तियों के उचित रूपरंग इनके कलात्मक गुणों को सिद्ध करते हैं।

–:कृषि व्यवस्थाः–

खजुराहो कला में कृषि कार्य करते हुए किसी भी प्रकार के दृश्य का अंकन प्राप्त नहीं होता है, परन्तु कृषि से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के औजार जैसे – हँसिया, खुरपी और हल प्रमुख रूप से प्राप्त हुए हैं।[9] वर्तमान की भाँति तत्कालीन कृषि कार्य हल एवं बैल के द्वारा किया जाता था। हल का उल्लेख चन्देल अभिलेखों में प्राप्त होता है। चूंकि बुन्देलखण्ड की भूमि पठारों से निर्मित है, अतः यहाँ पर कृषि कार्य अच्छी वर्षा, जलवायु की अनुकूल दशाओं तथा पूर्ण रूप से सिंचाई की सुविधाओं पर निर्भर करता था। किसानों द्वारा कृषि क्षेत्र का वर्गीकरण अपेक्षित बीज की मात्रा के आधार पर किया जाता था। द्रोणिक, खरिक तथा प्रास्थिक्रम वे क्षेत्र

खण्ड थे, जिसमें क्रमशः एक द्रोण, एक खारी तथा एक प्रस्थ बीज लगते थे।[10] कृषि कार्य को प्रारम्भ करने के लिए मौसम का ध्यान अधिक रखा जाता था। ग्रामीण शुभ–अशुभ में विश्वास रखते थे। अतः कृषि कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व रीति–रिवाजों का ध्यान अवश्य रखा जाता था।

सिंचाई व्यवस्था– कृषि कार्य को सक्षम बनाये रखने के लिए सिंचाई अतिमहत्वपूर्ण कारक है। राजवंशों द्वारा सिंचाई हेतु अनेकों तालाब तथा नहरों का निर्माण एवं जीर्णोधार करवाया गया। चन्देल शासकों ने भी यहाँ की परिस्थिति एवं जलवायु को ध्यान में रखते हुए बहुत से तालाबों एवं जलाशयों का निर्माण करवाकर सिंचाई की व्यवस्था की। इस प्रकार चन्देल कालीन कृषि प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों प्रकार की सिंचाई साधनों से लाभान्वित हुयी। 1011 विक्रम संवत के खजुराहो लेख में नदी की धारा मोड़ने के लिए बाँध बनाने का वर्णन है, जो कृषकों की सिंचाई सुविधा के लिए संकेत करता है।[11] अर्थात कृषि क्षेत्रों तक जल पहुँचाने के लिए बाँध का निर्माण किया जाता था। अभिलेखों के अन्तर्गत परमर्दिदेव के अजयगढ़ प्रस्तर अभिलेख से भी सिंचाई हेतु कूप एवं तड़ाग बनवाने का उल्लेख मिलता है।[12] इनके अतिरिक्त भी बहुत से तालाबों का निर्माण चन्देल शासकों द्वारा करवाया गया, जिसका उदाहरण वर्तमान में प्राप्त होता है। छतरपुर जिले में स्थित खजुराहो में खजूर सागर एवं शिव सागर ताल प्राप्त होते हैं। महाराज कीर्तिवर्मन द्वारा निर्मित कीरत सागर, महोबा के पूर्व में कल्याण सागर, विजयपाल द्वारा निर्मित विजय सागर, राहिल्य वर्मन द्वारा निर्मित राहिल ताल प्रमुख है। इसके अतिरिक्त अजयगढ़ से भी तालाब प्राप्त हुए हैं, जिसमें सबसे बड़ा तालाब चट्टान को काटकर बनाया गया था। इन तालाबों के अलावा कालंजर में भी सिंचाई हेतु बहुत से तड़ागों का निर्माण करवाया गया। इनमें कालंजर का वर्णारोहण ताल, पाताल गंगा, कालंजर का पाण्डु कुण्ड, बुढ़िया ताल, कोटतीर्थ तथा मगधारा नामक ताल प्रमुख है।[13] बांदा जिले के रसिन नामक ग्राम में एक छोटी सी पहाड़ी पर 'अधिक ताल' स्थित है। कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत 19 तालाबों की सूची में 'अधिक ताल' को अति प्रसिद्ध बतलाया है। अभिलेखों में अन्य नामों के रूप में नाला (नहर), पुष्करिणी (तालाब) एवं भित्ति (बाँध) का वर्णन किया गया है।[14] वापि चारो तरफ अथवा तीन या दो तरफ सीढ़ियों वाला कुँआ होता था। पुष्करिणी एक छोटे आकार के तालाब को कहा जाता था। पूर्वमध्य काल में सिंचाई के विभिन्न यंत्रों जैसे – पानी उठाने वाले यंत्र रहट्टघड़िया, अरघट्ट का प्रयोग किया जाता था।[15] दसवीं शताब्दी ई. के अभिलेख में सिंचाई हेतु रहट्ट तथा अरहट्टीयनर शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ एक प्रकार का मजदूर होता है।[16] इस प्रकार किसानों द्वारा यंत्रों का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया था। जिससे कम समय में अधिक सिंचाई करके कृषि कार्य को बेहतर बनाया जा सकता था।

कृषि उत्पाद–विभिन्न प्रकार के यंत्रों तथा सिंचाई के उचित प्रबन्ध से पठारी क्षेत्र होने के बाद भी तत्कालीन किसानों द्वारा फसलों के उत्पादन के अच्छे संकेत मिलते है। चन्देल कालीन अभिलेख फसलों का अत्यन्त रोचक वर्णन प्रस्तुत करते है। त्रैलोक्यवर्मन के सागर ताम्रपत्र के अनुसार चन्देल काल में असन, इक्षु (ईख), कुसुम, कर्पास (कपास), शण (सन), आम और महुआ अधिक मात्रा में उत्पन्न होता था।[17] इससे स्पष्ट होता है कि फलों एवं फूलों की भी खेती की जाती थी। पार्श्वनाथ मंदिर की चौखट पर उत्कीर्ण अभिलेख में पाहिल नामक व्यक्ति का वर्णन है, जिसने दान स्वरूप मंदिर के रख–रखाव हेतु बहुत सी वाटिकाएँ उपहार स्वरूप प्रदान की।[18] इन वाटिकाओं के नाम पाहिल वाटिका, चन्द्र वाटिका, छोटी चन्द्र वाटिका, शंकर वाटिका, पंचायताल वाटिका, आम के फलों की वाटिका एवं धंग वाटिका थी। इसके अतिरिक्त सेमरा ताम्रपत्र से गन्ने एवं शण की परमर्दिदेव के महोबा ताम्रपत्र लेख से साल, गन्ना, कपास, कुसुम आदि तथा इन्हीं के पछार एवं औगासी ताम्रपत्र लेख से कोरदो जैसे उत्पादों पर प्रकाश पड़ता है।[19] चन्देल काल में कृ–षि का विकास इससे स्पष्ट होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में 'कृषिपराशर' और बारहवीं शताब्दी के लगभग 'वृक्ष्यायुर्वेद' नामक कृषि से सम्बन्धित दो ग्रन्थों की रचना की गयी।

भूमि की माप–राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमि से प्राप्त होने वाला राजस्व था। राजस्व अधिकांशतः कर के माध्यम से प्राप्त किया जाता था जो भूमि की किस्म के आधार पर तय की जाती थी। चन्देल अभिलेखों में भूमि मापन के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। मदनवर्मन के विक्रम संवत 1290 के औगासी दान लेख में दस हल भूमिदान करने का वर्णन है। जिसके बोने के लिए 7½ द्रोण (वाव) की आवश्यकता होती थी।[20] प्रो. कीलहार्न महोदय ने वाव का अर्थ वायः अथवा बीज से किया है। इसके अतिरिक्त परमर्दिदेव के महोबा दानलेख[21] के अनुसार एक द्रोण लगभग सोलह प्रस्थ के बराबर होता है, क्योंकि उसमें 'पादेन द्रोण चतुष्टम' का प्रयोग हुआ है। जिसका आशय है कि एक पद कम चार द्रोण (64–4= 60 प्रस्थ) भूमि दान में दी गयी। इसी अभिलेख में उल्लेख है कि एक प्रस्थ बीज एक बाध के बराबर होता है और 10 X 6 = 60 प्रस्थ भूमि 5 हलों से जोती गयी। भूमि की माप को लेकर हल का प्रयोग बहुत बार किया गया है। डॉ. आर. डी. बनर्जी के अनुसार एक हल 96 द्रोण के बराबर होता था।[22] डॉ. सरकार के अनुसार भिन्न–भिन्न कालों में हल की माप अलग–अलग निर्धारित की गयी थी। परमर्दिदेव के पछार लेख में एक हल का अर्थ 7½ द्रोण भूमि से बतलाया गया।[23]

–:प□ुपालनः–

चन्देल कालीन स्थापत्य में विभिन्न प्रकार के पशुओं का अंकन मिलता है। इसके अतिरिक्त अभिलेखों से भी जानकारी प्राप्त होती है। देववर्मन के नन्यौरा ताम्रपत्र लेख में 'गोचर' शब्द प्राप्त हुआ है।[24] इसके आधार पर कह सकते हैं कि गाय चराने वाले चरवाहे भी समाज में थे एवं गायों की मात्रा अधिक होने के कारण इनकी नियुक्ति की जाती होगी। चूँकि प्राचीन काल में सम्पत्ति के अधीन पुत्र के अतिरिक्त पशुओं को भी स्थान प्राप्त था। इसलिए विक्रम संवत 1059 के खजुराहो लेख में दान की गयी वस्तुओं में धेनू शब्द का उल्लेख किया गया है।[25] अर्थात दान के रूप में गाय भी दी जाती थी। चन्देल कालीन समाज को स्थापत्य में प्रस्तुत करते हुए शिल्पकारों ने पालतू पशुओं का भी अंकन किया है। जिससे सम्बन्धित दृष्य वर्तमान में भी देखने को मिलते हैं। इसमें महिलाओं द्वारा पक्षियों को हाथ में पकड़े हुए भी दिखलाय गया है। तोते का अंकन कई दृश्यों में देखने को मिलता है। एक दृश्य में महिला को गोद में बाँए हाथ से बच्चे को थामे हुए तथा दाहिने हाथ में आम का गुच्छा पकड़े दिखाया गया, साथ ही पैरों पर एक बन्दर का अंकन है जो उसकी चुनरी पकड़े हुए है।[26] ऐसा प्रतीत होता है कि बन्दर उस महिला से आम लेना चाहता है। कृषि कार्य करने हेतु बैल की आवश्यकता होती थी। परमर्दिदेव के बटेश्वर अभिलेख में शत्रुओं की स्त्रियों के सन्दर्भ में पालतू तोतों एवं हिरण के बच्चों का उल्लेख हुआ है।[27]

–:मुद्राः–

चन्देल कालीन शासकों द्वारा भी सिक्के चलवाये गये। दुर्भाग्यवश अभी तक कीर्तिवर्मन से वीरवर्मन तक के आठ राजाओं द्वारा जारी सिक्के ही प्राप्त हुए हैं। ऐसा माना गया है कि कीर्तिवर्मन के पूर्व इनके द्वारा 'गधैया' प्रकार के सिक्के चलवाये गये।[28] ये सिक्के ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व में प्रयोग किये जाते होंगे, क्योंकि कीर्तिवर्मन ने लगभग 1060 ई. में सिक्कों का निर्माण प्रारम्भ करवाया। चन्देल कालीन अभिलेखों में मुद्रा से सम्बन्धित जानकारी प्रचुर मात्रा में प्राप्त नहीं होती है। विक्रम संवत 1011 के खजुराहो अभिलेख में मुद्राओं के 'पल'[29] एवं हाटक[30] शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसके विषय में एस. के. मैत्रा का मत है कि पल सोने को तोलने जबकि हाटक शब्द सोने के लिए प्रयुक्त हुआ है। चन्देल शासकों में कीर्तिवर्मन, सलक्षणवर्मन, जयवर्मन, पृथ्वीवर्मन, मदनवर्मन, यशोवर्मन द्वितीय, परमर्दिदेव, त्रैलोक्यवर्मन एवं वीरवर्मन के द्वारा सिक्के जारी करवाये गये। सिक्कों का अध्ययन करने से ऐसा माना गया कि चन्देल शासकों ने दूसरे राजवंश के सिक्कों का अनुकरण किया। एक मत के अनुसार चन्देलों के स्वर्ण सिक्के पश्चिमी चेदि राजा गांगेय देव तथा कलचुरी के हैहय वंशीय राजा दाहल के सिक्कों से मिलते–जुलते थे, जो महमूद गजनवी के समकालीन था।[31] इस प्रकार चन्देलों द्वारा चेदि राज्य

में प्रारम्भ हुये सिक्कों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया गया, जिससे तत्कालीन समाज सरलतापूर्वक चन्देल सत्ता को स्वीकार कर सके।

प्राप्त सिक्कों के आधार पर माना गया कि इन्होनें सोने, चाँदी एवं ताँबा जैसे तीनों प्रकार की धातुओं के सिक्के जारी करवाये। चेदि राजाओं के सिक्कों पर प्राप्त देवी की भाँति चंदेल सिक्कों पर भी देवी को उत्कीर्ण किया गया, जिसे कुछ विद्वानों ने चतुर्भुजी दुर्गा एवं कुछ विद्वानों ने लक्ष्मी की संज्ञा दी है। कनिंघम महादेय के अनुसार[32] गांगेय देव द्वारा जारी सोने, चाँदी एवं ताँबे के सिक्कों पर अग्रभाग में चतुर्भुजी दुर्गा को बैठे हुये दिखलाया गया एवं पश्च भाग पर श्रीमद् गांगेय देव उत्कीर्ण किया गया। इस प्रकार के तीन सोने के सिक्के जिनमें दो का वजन 63 एवं 61 ग्रेन तथा एक सोने के सिक्के का वजन 14 ग्रेन है। इसके अतिरिक्त चाँदी के सिक्कों का वजन 60 या 61 ग्रेन तथा ताँबे के सिक्को का वजन 50 से 59 ग्रेन है। चन्देल शासकों द्वारा जारी सिक्के छतरपुर जिले के खजुराहो तहसील में स्थित जतकारा ग्राम से प्राप्त हुए है। इन शासकों में कीर्तिवर्मन का स्थान प्रमुख है, क्योंकि उसके द्वारा ही सिक्के सर्वप्रथम चलवाये गये।

—:आय के साधनः—

चन्देल शासकों की आय के मुख्य साधनों में विविध प्रकार के कर, अर्थदण्ड तथा सामन्तों द्वारा भेंट में प्राप्त उपहार एवं राजकीय सम्पत्ति अर्थात विभिन्न प्रकार की खानें तथा नमक इत्यादि थे। इस काल में भाग, भोग, बलि, धान्य, हिरण्य, उपरिकर, उद्रंग कर, उदक भाग आदि करों का उल्लेख प्राप्त हुआ है।[33] इस काल के अभिलेखों में भाग–भोग कर का वर्णन अधिक मिलता है। विद्वानों द्वारा इस पर भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं। अतः चन्देलों ने भी इस कर का भोग अवश्य किया होगा। दक्षिण भारतीय अभिलेखों में आठ प्रकार के भोगों का उल्लेख मिलता है जिनमें निधि, निक्षेप, जल, पाषाण, अक्सिनी (वर्तमान लाभ), आगामी (भविष्य लाभ), सिद्ध आते थे।[34] उत्तर भारत में आठ प्रकार के भोग कर के स्थान पर कुछ ही करों का वर्णन मिलता है। हम्मीरवर्मन देव के विक्रम संवत 1346 के चरखारी अभिलेख में निधि, निक्षेप एवं पाषाण का ही उल्लेख हुआ है।[35]

राज्य द्वारा विभिन्न कर जैसे–पशुपालन कर, सिंचाई कर, व्यापार कर, सड़क कर इत्यादि नगद में प्राप्त होते थे। चन्देल काल में व्यापार, कृषि, पशुपालन इत्यादि का विकास होने से इन करों का आरोपण किया गया। डॉ. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय ने चन्देल कालीन कर को नियमित एवं आकस्मिक दो प्रकार के करों में विभक्त किया है। ऐसा मान सकते है कि पशु कर नकद में या आवश्यकतानुसार पशुओं का प्रयोग करके स्वीकार किया जाता होगा।

चन्देल कालीन दानपत्रों में चाट का उल्लेख मिलता है। परमर्दिदेव के एक दानपत्रानुसार आटविक नामक अधिकारी के अधीन कार्य करने वाले सभी छोटे कर्मचारी चाट कहे जाते थे।[36] ये राज्य के अस्थायी पुलिस अथवा सैनिक होते थे, जो युद्ध के समय जिस गाँव में निवास करते थे। वहाँ उनके खान–पान की व्यवस्था ग्रामवासियों द्वारा की जाती थी। इस प्रकार भी राज्य की आय में सहयोग प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त अर्थदण्ड भी आय का साधन माने जाता था। तत्कालीन समाज में न्याय व्यवस्था के अधीन दोषी को सजा देने का प्रचलन था। इसके अन्तर्गत अर्थदण्ड का भी प्रावधान था। इसका कुछ भाग न्यायिक कार्यों में तथा शेष राजकीय सम्पत्ति में जमा हो जाता था। राजकीय आय के प्रमुख साधन में लूट का माल या उपहार मिलना भी शामिल था। मदन वर्मन के मऊ अभिलेख से प्रकट होता है कि शासक उसे उपहार एवं भेंट देते थे, जिसके बदले चन्देल राजा उनकी रक्षा का भार वहन करता था।[37] राजकीय खानों से प्राप्त होने वाली आय को भी राजस्व वृद्धि में सहायक माना गया है।

–:व्यापारः–

बुन्देलखण्ड में आन्तरिक व्यापार के रूप में वस्त्र उद्योग प्रमुख था। चन्देल कालीन कला में उत्कीर्ण विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का अंकन प्राप्त होने से तत्कालीन समाज द्वारा खरीदने वाली वस्तुओं में वस्त्रों का स्थान प्रमुख था। अभिलेखों में वर्णित आपण में सामान्य एवं विशिष्ट वर्ग से सम्बन्धित व्यक्तियों हेतु आवश्यकता के अनुरूप वस्तुएँ मिलती थी। प्राप्त अभिलेखीय प्रमाणों से पूर्णतः स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में ईंट का व्यापार भी होता था।[38] टीकमगढ़ के अहार अभिलेख में वर्णित वसुहाटिका का उल्लेख मिलता है। इसे आधार मानकर शोधार्थी ममिता पटले ने इसका सम्बन्ध पशु बाजार से स्थापित किया है।[39] परन्तु संस्कृ–त शब्द कोश में वसु का अर्थ मणि, रत्न, सोना, वस्तु, द्रव्य, एक प्रकार का नमक इत्यादि मिलता है।[40] इससे स्पष्ट होता है कि चन्देल काल में ही छतरपुर जिले में स्थित खजुराहो में अवश्य ही बड़ा बाजार रहा होगा, जिसमें इन वस्तुओं से सम्बन्धित दुकाने लगती रही होंगी एवं इनका व्यापार भी किया जाता होगा। नगरों एवं बड़े ग्रामीण बाजारों के बाहरी भागों पर मंडपिक नामक चुंगी घर बनाये जाते थे, यहाँ लाभ का लगभग पचासवाँ भाग कर के रूप में लिया जाता था।[41]

चन्देल राज्य क्षेत्र में अधिकांश भू–भाग पहाड़ी तथा चट्टानों से घिरे होने के कारण इन क्षेत्रों में आवागमन का साधन स्थापित करना अत्यन्त कठिन था। चन्देलों ने अपनी पराक्रमता से मार्गों का निर्माण करवाया। चन्देलों द्वारा निर्मित आठ दुर्गो बारीगढ़, कालंजर, अजयगढ़, मनियागढ़, मरफा, मुंढा, गढ़ तथा मनियर को मिलाने के लिए स्थल मार्ग निर्मित किये गये।[42] ये मार्ग व्यापारिक एवं सैनिक दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक थे। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में खजुराहो की यात्रा का भी उल्लेख किया है। जिसके अनुसार चि–चि–तो अर्थात खजुराहो उज्जैन के उत्तर पूर्व में 250 मील की दूरी पर स्थित था।[43] मार्ग का अनुसरण करने से ज्ञात होगा कि उज्जैन से ग्वालियर और कन्नौज जाने का रास्ता खजुराहो से ही गुजरता था। दक्षिण–उत्तर व्यापारिक मार्ग बुन्देलखण्ड से ही होकर जाते थे। दक्षिण से आने वाले व्यापारी नर्मदा नदी पार करके विन्ध्य क्षेत्र में स्थल मार्गों से होते हुए यमुना नदी तक पहुँचते थे। पूर्वी मालवा की राजधानी विदिशा से बेतवा नदी घाटी से गुजरते हुए यात्री कौशाम्बी तक जाते थे। वर्तमान जबलपुर से इलाहाबाद जाने वाले मार्ग विन्ध्य श्रृंखला से गुजरते थे। ये मार्ग पुराने आन्तरिक मार्गों के अस्तित्व में होने का संकेत देते हैं। नर्मदा के तट से जबलपुर के पास तक एक संकीर्ण मार्ग ने उत्तर दक्षिण के बीच गमनागमन सम्भव बना दिया, जिससे राष्ट्रकूटों ने सम्भवतः इसी मार्ग से विन्ध्य मेखला पार करके उत्तरी–भारत पर चढ़ाई की थी।[44]

केन, बेतवा एवं चम्बल की भौगोलिक स्थिति के कारण कुछ दूरी तक इनमें नौ चालन हो सकता था। छतरपुर जिले की सीमा से केन तथा धसान नदी प्रवाहित होती है। इनमें धसान बेतवा की सहायक नदियों में से एक है। केन नदी के प्रवाहित होने के कारण छतरपुर जिले में व्यापारिक गतिविधियाँ होने की सम्भावना बढ़ जाती है। वैसे भी पूर्वमध्य काल में खजुराहो भी मध्य भारत के प्रमुख नगरों में समाहित था। इसके अतिरिक्त कौशाम्बी प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। शुक्तिमती से माघ नामक एक व्यापारी भगवान बुद्ध को छत्र भेंट करने हेतु कौशाम्बी आया था।[45] कौशाम्बी उत्तर एवं मध्य भारत की वस्तुओं के आयात एवं निर्यात हेतु सदैव से प्रमुखता में रहा। वर्तमान में भी भारत देश में ऐसे स्थान प्राप्त होते हैं। जहाँ वनों एवं पहाड़ियों को पार करने से लम्बी दूरियाँ बहुत कम हो जाती है। बौद्ध साहित्य में भृगुकच्छ से उज्जैनी होकर भिलसा खजुराहो होते हुए कौशाम्बी एवं दूसरे स्थानों तक जाने का वर्णन मिलता है। अभय कुमार ने संक्षिप्त वर्णन किया है जिसके अनुसार–[46]

(1) उज्जैनी – विदिशा –तुम्बवन (तुमैन)
दुधई – खजुराहो

(2) उज्जैनी – साँची – भिलसा (विदिशा)
दुधई – खजुराहो – कालंजर – चित्रकूट – कौशाम्बी

(3) मथुरा – उज्जैनी वाया साँची, जिसके मध्य में गोपगिरी (ग्वालियर) नरवर, देवगढ़ एवं दुधई पड़ता था।

उपसंहार–चन्देल कालीन आर्थिक स्थिति का अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से महत्वपूर्ण है, क्योंकि मध्य भारत में ये एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्थापित रहे। अभिलेखों एवं साहित्यों में अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है। इस काल के स्थापत्यों की भित्ति चित्रों से अर्थव्यवस्था को समृद्ध बनाने में समाज के कारीगरों ने भी अपनी कुषलता के आधार पर योगदान दिया। कृषि कार्य को उन्नत अवस्था में पहुँचाने के लिए चन्देल शासकों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की गयी। जिसके साक्ष्य वर्तमान में भी प्राप्त होते हैं। इस काल में भू–स्वामित्व के सभी उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस काल का व्यापार तथा वाणिज्य उन्नत अवस्था में थी। पाहिल जैसे व्यापारियों द्वारा शासक वर्ग से सम्पर्क के आधार इनकी श्रेष्ठता वर्णित होती है। चन्देल कालीन आर्थिक स्थिति में मंदिरों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मंदिरों की अर्थव्यवस्था के अध्ययन तथा उन पर उत्कीर्ण आलिंगनों से एक महत्वपूर्ण साक्ष्य भी प्राप्त हुए कि यह व्यवस्था प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के सदृष्य होने के बाद भी अपनी आँचलिक आवष्यकताओं से जुड़ी रही है। इसकी विषेषता एवं विषिष्टता चन्देल कालीन आर्थिक क्षेत्र में दिखयी देती है। वस्त्रों, आभूषणों, सामाजिक क्रियाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आर्थिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण, सुसम्पन्न एवं समृद्धशाली था।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, कन्हैयालाल, खजुराहो, प्रगति प्रिंटर्स दिल्ली, 1989, पृ. 28
2. पटले, ममिता, चन्देल कालीन आर्थिक स्थिति का विवेचनात्मक अध्ययन (9वीं सदी ई. से 13वीं सदी ई तक), अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 2015, पृ. 57
3. कुमार, अभय, ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ द सोसियो – इकोनॉमिक लाइफ अन्डर द चन्देलॉज, डेपिक्टेड इन इन्सक्रिप्सन, क्वाइन्स एण्ड आर्ट पीसेज इन जेजॉकभुक्ति, अप्रकाशित शोध प्रबंध, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 1987, पृ. 65
4. पूर्वोक्त, अग्रवाल, कन्हैयालाल, खजुराहो, पृ 27
5. कार्पस इन्सक्रिप्सन इंडिकेरम, संस्करण–VII भाग–III पृ, 510, पं. 26
6. अग्रवाल, उर्मिला, खजुराहो स्कल्पचर्स एण्ड देयर सिग्नीफिकेन्स (विथ इलस्ट्रेशन), पूर्वोक्त, पृ 185
7. बबेले, अर्चना, चन्देल शासकों के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, सागर प्रकाशन, सागर 1999, पृ 76
8. पूर्वोक्त, कार्पस इंस्क्रिपसन इंडिकेरम, संस्करण VII, पृ 394
9. पूर्वोक्त, अग्रवाल, उर्मिला, पृ 182
10. पूर्वोक्त, पटले, ममिता, पृ. 125
11. सिंह, विजयपाल, खजुराहो से महोबा, छत्रपति कल्याण समिति, वाराणसी, 2001, पृ 179–180
12. पूर्वोक्त, बबेले, अर्चना, पृ. 73
13. वही, पृ. 74
14. मैत्रा, एस.के. अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977, पृ. 180
15. पूर्वोक्त, चौधरी, राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ 108
16. वही, पृ 111
17. पूर्वोक्त, अग्रवाल, कन्हैयालाल, पृ 25
18. पूर्वोक्त, अग्रवाल, उर्मिला, पृ 183

19. पूर्वोक्त, बबेले, अर्चना, पृ. 73
20. पाण्डेय, डॉ अयोध्या प्रसाद, चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1968, पृ 190
21. वही
22. पूर्वोक्त, बबेले, अर्चना, पृ. 80
23. पूर्वोक्त, का.इ.इ. पृ 450
24. वही, का.इ.इ., पृ 360
25. वही, पृ. 389
26. पूर्वोक्त, अग्रवाल, उर्मिला, पृ 166
27. पूर्वोक्त, बबेले, अर्चना, पृ. 75
28. पूर्वोक्त, कुमार अभय, पृ. 152
29. एपीग्राफिका इंडिका, संस्करण– I, पृ. 143 पं. 33
30. वही, पृ. 146 पं. 50
31. मिश्र, केशव चन्द्र, चन्देल एवं उनका राजत्व काल, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, संवत 2011, पृ. 252
32. कनिंघम, अलेक्जेंडर, आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, संस्ककरण–X ,इंडोलॉजिकल बुक हाऊस वाराणसी, 1972, पृ. 25
33. श्रीवास्तव के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनीफाइड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2014–15, पृ. 610
34. गोपाल, लल्लन जी, द इकोनॉमिक लाइफ ऑफ नार्दन इंडिया सी. ए. डी. 700–1200, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965, पृ. 35–36
35. शास्त्री, हीरानन्द, एपीग्राफिका इंडिका, संस्करण – XX, आ.स.इं., जनपथ, नई दिल्ली, पृ. 136 पंक्ति 12
36. पूर्वोवत, एपीग्राफिका इंडिका, पृ. 44–48
37. पूर्वोवत, मिश्र, के.सी., पृ. 159
38. पूर्वोक्त, कुमार अभय, पृ. 39
39. पूर्वोक्त, पटले, ममिता, पृ. 178
40. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसी दास प्रा.लि., दिल्ली 2007, पृ. 909
41. पूर्वोक्त, मिश्र, के.सी., पृ. 159
42. वही, पृ. 32
43. कनिंघम आ.स.रि., संस्करण XXI, पृ. 58
44. पूर्वोक्त, मिश्र के.सी. पृ. 33
45. निगम, एम. एल., कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड (3 सी.बी.सी. टू ए.डी. 650), संदीप प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृ. 79
46. पूर्वोक्त, कुमार, अभय, पृ. 30